समय से संवाद : 11

साहित्य की जनपक्षधरता

समय से संवाद : 11

साहित्य की जनपक्षधरता

सम्पादक

बिपिन तिवारी

शृंखला सम्पादक

किशन कालजयी

अनन्य प्रकाशन

प्रकाशक : **अनन्य प्रकाशन**
ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032

© लेखकों की ओर से सम्पादक

प्रथम संस्करण : 2016

आयीएसबीएन : 978-93-81997-------

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032

मुद्रक : कॉम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

समय से संवाद

एक सच्चे लोकतन्त्र में न तो किसी तरह की सामाजिक गैरबराबरी की जगह हो सकती है और न ही किसी तरह की आर्थिक असुरक्षा की। इन दोनों कसौटियों पर परखें तो अभी हम एक पिछड़े हुए लोकतन्त्र में जी रहे हैं। भारतीय लोकतन्त्र को नियन्त्रित करने वाली समकालीन राजनीति में जिस तरह के नेतृत्व का बोलबाला बढ़ता जा रहा है, ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि सवा सौ करोड़ की आबादी वाले इस देश में पंचायत से लेकर संसद तक नेतृत्व जिनकी मुट्ठी में है, वे किस वर्ग के हैं और वे सही अर्थों में किनका प्रतिनिधित्व करते हैं? देश के 70 प्रतिशत लोग जो 20 रुपये रोजाना पर गुजर करने के लिए विवश हैं, क्या यह नेतृत्व उनकी भूख, उनकी शिक्षा, उनके स्वास्थ्य और उनके घर के लिए सरोकारी है? इनकी राजनीति में किसानों के संघर्ष और पीड़ा के लिए कितनी जगह है? भारत अभी भी कृषि प्रधान देश है, लेकिन संसद में किसानों के कितने नुमाइन्दे हैं? आखिर कारण क्या है कि सबसे अधिक आत्महत्या किसान ही करते हैं? अब इस देश में जो चुनावी संस्कृति पनपी है उसमें शायद ही कोई किसान विधायक या सांसद बनने का सपना देखता हो। इस देश की अधिकांश आबादी (गरीब) मतदाता बनकर रह सकती है या उपभोक्ता बनकर। इससे ऊपर उसकी कोई हैसियत ही नहीं है।

एक समय था जब राजनीतिक और सामजिक क्षेत्र में नेतृत्व स्वाभाविक तौर पर उभरता था और उसे स्वाभाविक स्वीकृति भी मिल जाती थी। समाज ईमानदारी से अपना नेता चुन लेता था, और नेताओं में भी वे गुण होते थे जो होने चाहिए थे। तब के नेताओं को अपेक्षाकृत निष्ठा, नैतिकता और सामाजिक मूल्यों की परवाह रहती थी और उनके गम्भीर सामाजिक सरोकार होते थे। जन आन्दोलनों की बात यदि छोड़ दें तो संसदीय राजनीति में अब नेता समाजसेवा और जनसंघर्ष जैसे लम्बे, उबाऊ और थका देने वाले रास्ते से नहीं आते, अब वे राजनीतिक और औद्योगिक घराने से आते हैं या फिर नौकरशाही से।

अभी हाल ही में सम्पन्न हुए बिहार विधान सभा चुनाव के अभूतपूर्व नतीजे आये। भारतीय जनता पार्टी के शीर्ष नेतृत्व ने जिस तरह से स्थानीय कार्यकर्ताओं और नेताओं की उपेक्षा करते हुए हवाई चुनावी अभियान चलाया उसे जनता ने खारिज कर दिया और भाजपा के खिलाफ महागठबंधन की भारी जीत हुई। इसके पहले दिल्ली में भी भाजपा का बुरा हाल हो चुका था। दिल्ली और बिहार के चुनावी नतीजे उस राजनीति के लिए सबक हैं जो राजनीति के 'शास्त्र' से बाहर जाकर अपनी मनमानी

करती है। इन नतीजों का आशय यह भी निकल रहा है कि हिन्दुत्व की कट्टरता और बहुसंख्यकों की आक्रामकता के लिए भी मौजूदा राजनीति में ज्यादा जगह नहीं है।

राजनीति की यह मनमानी और अपसंस्कृति मौजूदा लोकतन्त्र का बड़ा संकट है और यही संकट आज के समय का संकट है। इस पुस्तक शृंखला का बुनियादी सरोकार अपने समय से संवाद करना है। समय का तात्पर्य उस सच्चाई से भी है कि बच्चे यदि देश के भविष्य हैं तो बच्चों के लिए शिक्षा और साहित्य का एक उन्नत परिवेश होना चाहिए। कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का स्वभाव यदि जनविरोधी हो गया है तो मीडिया की जिम्मेवारी जनपक्षीय होनी चाहिए। दुर्योग यह है कि मीडिया कारपोरेट के चंगुल से निकल नहीं पा रहा है। जाहिर है उसकी प्राथमिकता सत्य की खोज करने और झूठ को ध्वंस करने में नहीं रही, वह कारपोरेट और सत्ता के बीच दलाली के दलदल में फँसता जा रहा है।

पिछले सात वर्षों में 'सबलोग' के माध्यम से हर महीने किसी एक राजनीतिक या सामाजिक मुद्दे पर पड़ताल होती रही है। 'सबलोग' के पाठकों की वर्षों से यह इच्छा रही है कि 'सबलोग' में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण सामग्री को पुस्तक रूप में लाया जाए। इसी सन्दर्भ में पिछले पुस्तक मेला (जनवारी 2015) के दौरान 'समय से संवाद' शृंखला का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकाशन परियोजना से पिछले वर्ष हमने दस युवा सम्पादकों (अच्युतानंद मिश्र, आशा, पंकज शर्मा, स्वतंत्र मिश्र, अकबर रिजवी, रामनरेश राम, अनुज लुगुन, संजीव चन्दन, महेश्वर, नीरू अग्रवाल) को जोड़ा, जिन्होंने साहित्य, रंगमंच, सिनेमा, शिक्षा, मीडिया, दलित राजनीति, आदिवासी साक्षरता, स्त्री-विमर्श, बाल साहित्य, हिन्दी उपन्यास पर दस पुस्तकें सम्पादित कीं। यहाँ यह उल्लेख अनावश्यक नहीं होगा कि पिछले पुस्तक मेला में इस शृंखला की दसों पुस्तकें सर्वाधिक चर्चे में रहीं।

'समय से संवाद' शृंखला की अगली कड़ी में इस बार पुस्तक मेले में दस किताबों का एक सेट फिर जारी किया जा रहा है। जाहिर है साहित्य, सिनेमा, संस्कृति, मीडिया, राजनीति, सामाजिक न्याय, और उपनिवेश ही विमर्श के केन्द्र में है। दरअसल इस शृंखला के माध्यम से हम साहित्य, समाज, संस्कृति और राजनीति के बुनियादी मुद्दों की पड़ताल करते हैं।

जितने कम समय में सभी सम्पादकों ने इन पुस्तकों को तैयार करने में जो मेहनत की है उसके लिए धन्यवाद जैसा औपचारिक शब्द काफी छोटा है। हाँ, यह कहने में मुझे कोई हिचक नहीं हो रही है कि ये सभी युवा सम्पादक अपनी-अपनी विधा में सृजनशील प्रतिभा के धनी हैं, किसी प्रकाशन योजना में इनका एकजुट होना हिन्दी के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस 'घटना' को अंजाम देने के लिए प्रकाशक अतुल माहेश्वरी ने जो तत्परता और तैयारी दिखायी है, वह उनकी वैचारिक समझ को रेखांकित करती है और हिन्दी प्रकाशकों की भीड़ से भी उन्हें अलग करती है। मुझे विश्वास है कि 'समय से संवाद' शृंखला की ये पुस्तकें भी पाठकों को पसन्द आयेंगी।

(किशन कालजयी)

भूमिका

साहित्य को जब भी परिभाषित करने की कोशिश की जायेगी तब साहित्य की पक्षधरता के प्रश्न पर भी विचार किया जायेगा। साहित्य पर विचार बिना पक्षधरता के हो ही नहीं सकता। साहित्य में पक्षधरता का प्रश्न साहित्य के सरोकारों की दिशा निर्धारित करता है। मध्ययुगीन साहित्य से लेकर आधुनिक युग के साहित्य तक में इस तथ्य को देखा जा सकता है। चौदहवीं शताब्दी के बांग्ला भाषा के कवि चण्डीदास ने मनुष्य की प्रतिष्ठा को ही काव्य का प्रमुख विषय माना है।

सुनो रे मानुष भाई
साबार ऊपरे मानुष सत्ते,
ताहार ऊपरे नाई।

वहीं हिन्दी भाषा के मध्यकालीन साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य तक में मनुष्य की श्रेष्ठता को देखा जा सकता है। मनुष्य की श्रेष्ठता स्थापित करने का अर्थ है मनुष्यता में विश्वास। साहित्य में इस मनुष्यता को बचाने और उसे संवारने की कोशिश की जाती रही है। इसी कारण साहित्य की परिभाषा युग और परिस्थिति के हिसाब से बदलती रही है। मनुष्य का जीवन जब तक कष्टों में फंसा हुआ है, विडम्बनाओं से ग्रस्त है तब तक साहित्य की यह यात्रा लगातार चलती रहेगी। मनुष्य का जीवन किसी भी दौर में ऐसा नहीं रहा है जिसे दुःखों से मुक्त या विडम्बना रहित कहा जा सके, ऐसे में जरूरी हो जाता है कि मनुष्यता को बचाने का हर सम्भव प्रयास हर युग में किया जाए। साहित्य में पक्षधरता का सवाल साहित्य की मूल संवेदना से जुड़ा हुआ है। ऐसा साहित्य जो समाज के निम्न वर्ग का पक्ष लेने के बजाय उच्च वर्ग के हितों की बात करता हो, उसे साहित्य नहीं कहा जा सकता। साहित्य वही है जो पीड़ित, दलित जनता के दुःखों को कम करने में मदद करे। सत्ता से साहित्य का विरोध इन्ही सरोकारों के कारण होता है। साहित्य अपने समय की समस्याओं को आम-जन के सम्मुख अभिव्यक्त करता है जबकि सत्ता अपने स्वार्थों के कारण आम जन का शोषण करके अपने हित पूरे करती रही है। इसीलिए सत्ता, साहित्य का दमन

करने का प्रयास करती रहती है। इस दमन को साहित्य और साहित्यकार दोनों को झेलना पड़ा है। साहित्य ने अपनी स्वायत्तता को हर युग में बनाए रखने का प्रयास किया है। मध्य काल में कबीर को अपने विचारों के कारण शारीरिक यातना तक झेलनी पड़ी तो वहीं तुलसीदास को सत्ता के आतंक के लिए कहना पड़ा—

हम चाकर रघुवीर के, पटौ लिखो दरबार।
अब का तुलसी का होइंगे, नर के मनसबदार॥

कबीर और तुलसी के विरोध का स्वर भले ही भक्ति का आधार लिए हो परन्तु उनकी विवेचना से पता चलता है कि वह साहित्य को किसी राजा या मनसबदार के सामने गिरवी रखने को तैयार नहीं थे। कुंभनदास ने साहित्य की स्वायत्तता को या पक्षधरता को अलग ढंग से व्यक्त किया है—

संतन को कहाँ सीकरी सो काम?
आवत जात पनहिया टूटी, बिसर गयो हरिनाम।
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम॥

इन सभी काव्य पंक्तियों से मध्ययुगीन साहित्य की पक्षधरता को देखा जा सकता है। साहित्य की स्वायत्तता और सत्ता के साथ उसका विरोध एक सामान्य सी बात है। सत्ता अपने खिलाफ किसी भी तरह की चेतना को विकसित होने देना नहीं चाहती। वह चाहे सामन्ती दौर की सत्ता हो या फिर आज की सत्ता। सत्ता का चरित्र सदैव एक सा ही रहता है। सत्ता और साहित्य के बीच प्रतिरोध की स्थिति बनी रहती है। मुक्तिबोध के हवाले से कहें तो यह किसी भी रचनाकार के लिए अत्यन्त आवश्यक भी है। वह अपने आत्मवक्तव्य : एक में लिखते हैं-'मेरी हर विकास-स्थिति में मुझे घोर असन्तोष रहा है, और है। मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है।...' यह असन्तोष ही रचनाकार की जीवन शक्ति है, जिसके द्वारा वह वर्तमान की विद्रूपताओं को मिटाने और सभ्य समाज बनाने की कल्पना करता है। जिस साहित्य में यह कल्पना नहीं दिखाई पड़ती वह साहित्य जनता से दूर हो जाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने एक निबन्ध 'साहित्य में आधुनिकता' में साहित्य को एक नए सन्दर्भ में व्याख्यायित किया है-'...प्रत्येक देश का साहित्य मुख्यतः अपने पाठकों के लिए होता है; किन्तु उसी के भीतर हम उस स्वाभाविक दाक्षिण्य की प्रत्याशा करते हैं जिससे वह दूर पास के सभी अतिथियों के लिए भी आसन जुटा पाता है। जिस साहित्य में वह आसन बिछा हुआ है वही साहित्य महत साहित्य है, सभी युगों के मनुष्य उस साहित्य का स्थायित्व सुनिश्चित करते हैं; उसकी प्रतिष्ठाभित्ति सभी मानवों के चित्त जगत में है।' इस उद्धरण में जिन पाठकों की बात की गई है वह मूलतः देश

की सीमाओं से परे वह आम जन है जो किसी भी देश के साहित्य को पढ़ते हुए अपने को उससे जोड़ सकता है। साहित्य मनुष्य को उसकी संकीर्णताओं से मुक्त कर उसे विश्व का नागरिक बनाता है। इसीलिए रूसी साहित्य को पढ़ते हुए हम वहाँ के किसानों के दुःखों और सामन्ती व्यवस्था के चरित्र को उतनी ही गहराई से समझ सकते हैं जिस तरह से प्रेमचंद के साहित्य को पढ़ते हुए भारतीय सामन्ती व्यवस्था को समझते हैं। इसमें किसी भी कालजयी लेखक के साहित्य को रखकर देखा जा सकता है।

साहित्य में पक्षधरता को लेकर एक बार फिर बहस हो रही है। साहित्य की स्वायत्तता और उसकी पक्षधरता के प्रश्न को विभिन्न कोणों से विवेचित किया जा रहा है। हाल ही में साहित्य अकादमी की स्वायत्तता को लेकर जिस तरह की सक्रियता रचनाकारों ने दिखाई उससे एक बार फिर साहित्य की महत्ता को नया आयाम मिला है। साहित्य और साहित्यकार की महत्ता को मुक्तिबोध ने अपनी कविता में कुछ इस तरह व्यक्त किया है-

'तुम्हारे पास, हमारे पास,
सिर्फ़ एक चीज है-
ईमान का डण्डा है,
बुद्धि का बल्लम है,
अभय की गेंती है,
हृदय की तगारी है-तसला है
नये-नये बनाने के लिए भवन
आत्मा के,
मनुष्य के... ।'

साहित्य की पक्षधरता के सवाल को हर दौर में अलग-अलग तरह से विवेचित किया गया है। इस संकलन में साहित्य का तात्पर्य क्या है?, साहित्य, पक्षधरता, साहित्य की आकांक्षा, रचनाकार की स्वतंत्रता आदि विभिन्न पहलुओं से जुड़े निबन्धों को शामिल किया गया है। साहित्य से जुड़े इन पहलुओं को शामिल करने का उद्देश्य है कि जब तक साहित्य के इन विभिन्न पहलुओं को नहीं समझा जाता तब तक साहित्य की पक्षधरता के प्रश्न को सीधे-सीधे नहीं जांचा-परखा जा सकता। साहित्य की पक्षधरता के प्रश्न का जो तर्क कबीर और तुलसीदास मध्यकाल में प्रस्तुत करते हैं वह आज के तर्क से अलग है। कबीर और तुलसी के भी तर्क एक ही युग में होते हुए भी अलग-अलग हैं। कबीर जहाँ अपने दोहों और पदों में आम-जन से जुड़ी बातों को सीधे सरल ढंग से कहते हुए उस समय की सत्ता 'राजा' को चुनौती देते हैं तो तुलसीदास राज प्रासाद के प्रलोभनों को ठुकराकर आम-जन के प्रति अपनी पक्षधरता

प्रकट करते हैं।

इस संकलन में रवीन्द्रनाथ टैगोर के निबन्ध से लेकर समकालीन लेखकों के निबन्धों को शामिल किया गया है। संकलन में संकलित रवीन्द्रनाथ टैगोर का निबन्ध 'साहित्य का तात्पर्य' युगीन सन्दर्भों में साहित्य की व्याख्या करता है जो पक्षधरता के प्रश्न से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है। बालकृष्ण भट्ट ने 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबन्ध में साहित्य को उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप माना है, जिसमें वह रचा जा रहा है। साहित्य में यदि अपने समय के आदर्श को अभिव्यक्त नहीं किया जाता तो साहित्य का अपने युग से जुड़ाव नहीं रह जाता। वहीं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'साहित्य' निबन्ध में साहित्य को सामाजिक बदलाव में एक औजार के रूप में व्याख्यायित किया है तथा विश्व में सभी तरह के बदलावों में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानते हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'साहित्य की आकांक्षा' निबन्ध में साहित्य की शक्ति पर जोर दिया है। साहित्य की रचना करने वाले व्यक्ति में परंपरागत रास्ते से अलग सोचने और कहने का अदम्य साहस होता है। इस अदम्य साहस के कारण ही वह आम-जन द्वारा सर-आंखों पर बैठाया जाता है। सृष्टा आम-जन के उन भावों को वाणी देता है जिन्हें जनता कह नहीं पाती, जबकि उनके कारण घुटती रहती है। प्रेमचंद 'साहित्य का उद्देश्य' निबन्ध में साहित्य को उस आम-जन से जोड़ना चाहते हैं जो शोषित, पीड़ित है और अभी तक साहित्य के सौंदर्य को जांचने-परखने के जो प्रतिमान बने हुए थे, उनको बदलने पर भी जोर देते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' निबन्ध में मनुष्य को ही साहित्य के सन्दर्भ में रखकर व्याख्यायित किया है। द्विवेदी जी मानते हैं कि ऐसा साहित्य जो एक मनुष्य को दूसरे के प्रति संवेदनशील बनाए, मनुष्य की दुर्गति को कम करे उसे ही साहित्य कह सकते हैं। मार्क्सवादी लेखक यशपाल ने 'लेखक का दायित्व और सामाजिक न्याय' निबन्ध में साहित्य को देशकाल के अनुसार सामाजिक न्याय की मान्यताओं को समर्थन करने और उस समय के हिसाब से सामाजिक न्याय के विकास के लिए संघर्ष करने का लेखा-जोखा माना है, जिससे समाज के बहुसंख्यक वर्ग को समान अधिकार मिल सकें। गाँधीवाद से प्रभावित रचनाकार विष्णु प्रभाकर ने 'साहित्य : मानवात्मा की बंधनहीन अभिव्यक्ति है' निबन्ध में साहित्य को मानव आत्मा की मुक्ति के रूप में विवेचित किया है। साहित्य में यह अभिव्यक्ति तभी सम्भव है जब रचनाकार हर तरह के बंधनों से मुक्त हो। मार्क्सवादी आलोचक शिवदान सिंह चौहान ने 'साहित्य में पूर्ण मानव की प्रतिष्ठा' निबन्ध में साहित्य के विभिन्न युगों को सन्दर्भ में रखकर मूल्यांकन किया है। वह मानते हैं कि साहित्य की महान प्राचीन कृतियाँ मनोरंजन के साथ हमारी चेतना का विस्तार करती हैं और कर्म की प्रेरणा भी जागृत करती हैं, जिससे मनुष्य समय रहते प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विश्व शान्ति भंग करने के मंसूबे विफल कर दे। इसके बाद ही सभी मनुष्य अपनी

मेहनत से एक स्वतन्त्र जनवादी समाज का निर्माण कर सकेंगे। वहीं आलोचक नामवर सिंह ने 'आज : साहित्य की चुनौतियाँ और सरोकार' निबन्ध में इक्कीसवीं सदी के सन्दर्भ में साहित्य के समक्ष चुनौतियों पर अपनी राय दी है। इसमें विभिन्न तरह से चुनौतियाँ की विवेचना करते हुए उत्तर आधुनिकता और उसकी अवधारणाओं को भी सन्दर्भ में रखा गया है। यह परिचर्चा इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों को समझने में काफी महत्त्वपूर्ण है। कवि-आलोचक अशोक वाजपेयी ने 'जनसत्ता' के अपने कॉलम में मारियो वरगास ल्योसा के सन्दर्भ में 'साहित्य के पक्ष में' साहित्य की उपयोगिता को रेखांकित करते हैं। उनका मत है-'साहित्य गल्प गढ़ता है : अपनी वास्तविकताओं और झूठों से वह मानवीय सच्चाई के बारे में गहन सत्यों को हमारी पहुँच में लाता है।' वहीं आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'साहित्य का स्वराज' में साहित्य के हस्तक्षेप को मनोजगत के बदलाव में महत्त्वपूर्ण माना है। साहित्य की इस शक्ति से सत्ता भी डरती है।

प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपने लेख-'साहित्य क्या है?-एक बहुदेववादी उत्तर' में साहित्य की अब तक की गई व्याख्याओं को जांचने-परखने के साथ-साथ साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन किया है। आलोचक वीरेन्द्र यादव ने 'असहिष्णुता के समय में लेखक होना' निबन्ध में आज के समय में लेखक के सामने उपस्थित चुनौतियों को विवेचित किया है। उनका तर्क है कि आज सत्ता दमन पर उतारू है जिसे नरेन्द्र दाभोलकर, प्रोफेसर एम. कलबुर्गी की हत्याओं में देखा जा सकता है। साहित्य को इन्हीं चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी स्वायत्तता बनाए रखनी है। आलोचक वैभव सिंह ने 'जनपक्षधरता के सवाल को बाजारू गुलामी से कला की आजादी' निबन्ध में जनपक्षधरता के सवाल को बाजारू गुलामी से मुक्ति के रूप में देखा हैं। बाजार ने मनुष्य को किसी विचार पर अडिग रहने का नैतिक साहस ही लगभग खत्म कर दिया है। इसी सवाल को ध्यान में रखकर साहित्य और साहित्य की पक्षधरता को लेकर लिखे गये अब तक के महत्त्वपूर्ण निबन्धों का संकलन 'साहित्य की जनपक्षधरता' षीर्शक से किया गया है। इस संकलन में शामिल निबन्धों को लेकर इस बात का किसी भी रूप में दावा नहीं हैं कि यह अभी तक का सबसे श्रेष्ठ संकलन है परन्तु इस बात का दावा अवष्य है कि यह साहित्य, साहित्य की पक्षधरता के कुछ अनछुए पहलुओं को सामने अवश्य लायेगा। पुस्तक के कवर पृष्ठ पर चण्डीदास की कविता देने की योजना थी पर कविता का सन्दर्भ न मिल पाने के कारण उसे नहीं दे पा रहे हैं, जिसका मुझे खेद है। इस संकलन में शामिल निबन्धों को साभार रूप में लिया गया है। मैं उन सभी रचनाकारों, संकलनकर्ताओं के प्रति कृतज्ञ हूँ। इसके साथ ही कुछ लेखकों से लिखित, वाचिक अनुमति भी ली गई है, इन सभी का भी आभारी हूँ। प्रोफेसर नामवर सिंह, अशोक वाजपेयी, विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मुझ पर भरोसा रखा और

अपने संकलित निबन्ध इस पुस्तक में प्रकाशित करने की अनुमति दी। इसके साथ ही मैं वीरेन्द्र यादव तथा वैभव सिंह जी का ऋणी हूँ जिन्होंने बहुत कम समय में नए लेख लिखे। इस संकलन में बहुत सी कमियाँ-कमजोरियाँ रह गयी हैं जिन्हें मित्र, सुधी पाठक मुझे अवश्य अवगत कराएंगे। संकलन में पृष्ठों की संख्या के दबाव के चलते बहुत से महत्त्वपूर्ण लेखों को छोड़ देना पड़ा है, जिसका मलाल है। नॉम चोमस्की ने एक साक्षात्कार में कहा था-'मैं अच्छा व्याख्यान देने वाला नहीं बनना चाहता बल्कि ऐसी बात मैं कहना चाहता हूँ कि लोग उस पर सोंचे।' ठीक यही बात इस संकलन पर लागू होती है। दोस्त लोग यदि इस पर विचार करेंगे, मुझे मेरी कमियों से अवगत कराएंगे तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जाएगा।

अन्त में इस संकलन का दायित्व सौंपने के लिए मैं 'संवेद' पत्रिका के संपादक किशन कालजयी का शुक्रगुजार हूँ। साथ ही अपने गुरुजनों, मित्रों, विभागीय सहयोगियों और गोवा विश्वविद्यालय पुस्तकालय का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनका इस काम में विशेष सहयोग मिला। इस संकलन के प्रकाशन के लिए मैं 'नयी किताब' के अतुल माहेश्वरी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने कम समय में पाठकों तक इसे पहुँचाने का काम किया।

–बिपिन तिवारी

अनुक्रम

समय से संवाद	: *किशन कालजयी*	*(v)*
भूमिका	: बिपिन तिवारी	*(vii)*
साहित्य का तात्पर्य	: *रवीन्द्रनाथ टैगोर*	15
साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है	: *बालकृष्ण भट्ट*	28
साहित्य	: *महावीर प्रसाद द्विवेदी*	35
साहित्य का उद्देश्य	: *प्रेमचन्द*	38
साहित्य की आकांक्षा	: *सूर्यकांत त्रिपाठी निराला*	50
लेखक का दायित्व और सामाजिक न्याय	: *यशपाल*	53
साहित्य में पक्षधरता, विश्वबोध, और मानव-मूल्य	: *मुक्तिबोध*	60
मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है	: *हजारीप्रसाद द्विवेदी*	63
साहित्य : मानवात्मा की बन्धनहीन अभिव्यक्ति	: *विष्णु प्रभाकर*	71
साहित्य में पूर्ण मानव की प्रतिष्ठा	: *शिवदानसिंह चौहान*	75
आज : साहित्य की चुनौतियाँ और सरोकार	: *नामवर सिंह*	81
साहित्य के पक्ष में	: *अशोक वाजपेयी*	95
साहित्य का स्वराज	: *विश्वनाथ त्रिपाठी*	97
साहित्य क्या है?—एक बहुदेववादी उत्तर!	: *पुरुषोत्तम अग्रवाल*	102
असहिष्णुता के समय में लेखक होना	: *वीरेन्द्र यादव*	112
नपक्षधरता यानी बाजारू गुलामी से कला की आजादी	: *वैभव सिंह*	118
लेखक परिचय		126